भारत में मौद्रिक नीति का बदलता स्वरूप*

दीपक मोहन्ती

मैं भूटान की रॉयल मोनेटरी अथॉरिटी तथा गवर्नर महामदिम डॉ. तेन्ज़िन के प्रति आभार प्रकट करता हूँ कि उन्होंने मुझे इस विद्वत्सभा में भाषण देने के लिए आमंत्रित किया। मैं भारत की मौद्रिक नीति के बारे में चार कारणों से बोलना चाहता हूँ। पहला, भारत और भूटान की मुद्राएँ अर्थात् रुपया और नगुल्त्रुम एक दूसरे से करीब से जुड़ी हैं, इसलिए भारत की मौद्रिक नीति के निहितार्थ भूटान की मौद्रिक नीति के लिए भी हैं। दूसरे, रिज़र्व बैंक ने अक्तूबर 2011 में बैंकों की बचत जमा ब्याज दर को भी अविनियमित कर दिया जो ब्याज दर विनिमयन का एक अंतिम अवशेष बचा हुआ था । इससे पूर्व जुलाई 2010 में आधार दर प्रणाली की शुरुआत के साथ ही हमने बैंकों की ऋण वितरण दरों के अविनिमयन की प्रक्रिया पूरी कर ली थी। तीसरे, हमने मौद्रिक नीति के स्वरूप को असंदिग्ध रूप से एकल नीति रिपो दर बनाने के लिए मई 2011 में अपनी मौद्रिक परिचालन प्रक्रिया में भी संशोधन किया। चौथे, हम लगभग दो सालों से लगभग दो अंकों में चल रही मुद्रास्फीति की चुनौती का भी सामना कर रहे हैं। हमारी मुद्राओं के करीबी अन्तर्जुड़ाव के कारण ये सब बातें निश्चय ही भूटान के हित की भी हो सकती हैं।

भारत में मौद्रिक नीति की निर्माण प्रक्रिया और इसके कार्यान्वयन के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा करने से पूर्व मैं मौद्रिक नीति के उद्देश्यों और ढाँचे के बारे में संक्षेप में बताते हुए अपना भाषण शुरु करूँगा। उसके बाद मैं संक्षेप में वृद्धि-स्फीति कार्यनिष्पादन पर आऊँगा। अंत में मैं हाल के वैश्विक संकट से मौद्रिक नीति निर्माण की प्रक्रिया के लिए सीखे गए सबकों पर आपका ध्यान आकर्षित करूँगा।

मौद्रिक नीति के उद्देश्य

मौद्रिक नीति सरकारी नीति का ही एक भाग होती है। इसके अपने उद्देश्य और प्राथमिकताएँ होती हैं जो केंद्रीय बैंकों के संबंधित अधिदेशों से ली गई होती हैं। ये उद्देश्य मूल्य स्थिरता के अकेले उद्देश्य, जो कि मौद्रिक नीति का प्रमुख उद्देश्य माना जाता है, से लेकर बहुविध उद्देश्यों तक फैले हैं जिसमें वृद्धि और वित्तीय स्थिरता शामिल हैं।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम 1934 की प्रस्तावना में रिज़र्व बैंक के मूल कार्य इस प्रकार बताए गए हैं। भारत में मौद्रिक स्थिरता बनाए रखने तथा साधारणतः देश की मुद्रा और ऋण प्रणाली को इसके लाभ के लिए परिचालित करने हेतु बैंक नोटों के निर्गम तथा प्रारक्षित निधियों के रखरखाव को विनियमित करना। इस व्यापक दिशानिर्देश से बनी मौद्रिक नीति का उद्देश्य कीमतों की स्थिरता बनाए रखना तथा अर्थव्यवस्था के उत्पादक क्षेत्रों के लिए पर्याप्त ऋण प्रवाह सुनिश्चित करना है। मुद्रा की क्रयशक्ति को सुरक्षित रखे बिना मौद्रिक स्थिरता को सुनिश्चित नही किया जा सकता। इसी प्रकार ऋण प्रणाली वृद्धि का पोषण करती है जिससे मौद्रिक स्थिरता मजबूत होती है। इस प्रकार मुद्रास्फीति का कम स्तर पर स्थिरीकरण तथा उत्पादन का इसके आसपास के स्तर पर स्थिर रखना भारत में मौद्रिक नीति के अत्यंत अनिवार्य उद्देश्य हैं। व्यावहारिक रूप से भारत की मौद्रिक नीति ने आर्थिक वृद्धि और मूल्यस्थिरता के बीच एक विवेकपूर्ण संतुलन बनाए रखने के प्रयास किए हैं।

मूल्य स्थिरता से अभिप्राय अनिवार्यत: कोई स्थिर मूल्य स्तर नहीं है बल्कि एक निम्न और स्थिर मुद्रास्फीति है। यह इसलिए है क्योंकि उच्च मुद्रास्फीति तथा अपस्फीति - दोनों उत्पादन की हानि तथा संसाधनों के गलत आबंटन द्वारा अर्थव्यवस्था पर लागतें थोपती हैं । तथापि निम्न और स्थिर मुद्रास्फीति के यथार्थ स्तर को परिभाषित करना बहुत कठिन है। व्यावहारिक रूप में मुद्रास्फीति विकसित देशों के लिए 2 प्रतिशत तथा विकासशील देशों के लिए 3.5 प्रतिशत रखे जाने का लक्ष्य रखा जाता है और इसे ही मूल्य स्थिरता माना जाता है[1]।

भारत के लिए चक्रवर्ती समिति (1985) ने 4 प्रतिशत की वार्षिक स्फीति दर को "सहने-योग्य" के रूप में परिभाषित किया था। इस संदर्भ में स्फीति के प्रारंभिक स्तर की अवधारणा महत्वपूर्ण हो जाती है

*1 दिसम्बर 2011 को रॉयल मोनेटरी अथॉरिटी ऑफ भूटान, थिंपू में भारतीय रिज़र्व बैंक के कार्यपालक निदेश श्री दीपक मोहन्ती द्वारा दिया गया भाषण, श्री जे.के.खुन्द्रकपम तथा राजीव जैन द्वारा प्रदान की गई सहायता के लिए आभार प्रदर्शित किया जाता है।

[1] शिमट-ग्रोहे, स्टिफेनी तथा मार्टिन उरिबे (2011), "द ऑप्टिमल रेट ऑफ इन्फ्लेशन" इन *हैण्डबुक ऑफ मोनेटरी इकॉनोमिक्स*, फ्रायडमैन, बी तथा वुडफोर्ड, एम (ईडीएस)।

जो 'वृद्धि-स्फीति' के समन्वयकारी तालमेल का नमन बिन्दु है। प्रारंभिक बिंदु से परे, स्फीति स्वयं ही वृद्धि की विरोधी हो जाती है। भारत पर किये गये हाल के अध्ययनों से संकेत मिला है कि प्रारंभिक स्फीति 4-6 प्रतिशत के बीच हो सकती है।[2] तथापि 'प्रारंभिक स्फीति बिंदु' (इन्फ्लेशन थ्रेशोल्ड) आवश्यक नहीं कि मौद्रिक नीति का लक्ष्य हो। असल में, मौद्रिक नीति उपायों के प्रभावों के संप्रेषण में समय लगने तथा मुद्रास्फीति की लागत को देखते हुए, मौद्रिक नीति के लिए मुद्रास्फीति का उद्देश्य अथवा स्फीति का लक्ष्य स्तर 'मुद्रास्फीति के थ्रेशोल्ड' से कम होना चाहिए।

ऐतिहासिक दृष्टि से भारत, उभरती बाज़ार अर्थव्यवस्थाओं तथा अन्य विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के संदर्भ में एक संयत मुद्रास्फीति वाला देश रहा है। 1970-71से 2000 के अंत तक यहां की दीर्घावधि औसत मुद्रास्फीति दर एक अंकीय अर्थात् लगभग 7.5 प्रतिशत रही है। असल में 2000 के दशक में औसत स्फीति और भी कम, अर्थात् 5.5 प्रतिशत थी। तथापि 2010-2011 के शुरू से बनी हुई लगभग द्वि-अंकीय स्फीति दर भारत की मौद्रिक नीति के लिए एक चुनौती बन गई है। स्फीति में आए हाल के इस उछाल के बावजूद, मौद्रिक नीति में इसे 4.0 - 4.5 प्रतिशत तक बनाए रखने की अवधारणा ही परिलक्षित है। यह, वैश्विक अर्थव्यवस्था के साथ भारत के व्यापक एकीकरण के अनुरूप, 3.00 प्रतिशत स्फीति बनाए रखने के मध्यावधि उद्देश्य के अनुसार ही है।

तथापि, हाल के वैश्विक वित्तीय संकट ने दर्शाया है कि वृद्धि की उच्च स्तर और स्फीति की कम दर, वित्तीय स्थिरता की गारंटी नहीं देती है। तदनुसार, इस बात पर लगातार बल दिया जा रहा है कि मूल्य स्थिरता और वृद्धि के साथ-साथ, वित्तीय स्थिरता भी केंद्रीय बैंकों का एक सुस्पष्ट उद्देश्य होना चाहिए। तथापि भारत में, संकट से काफी पहले से ही वित्तीय स्थिरता मौद्रिक नीति का एक अन्य महत्वपूर्ण उद्देश्य माना जाता रहा है।

इस प्रकार, भारत की मौद्रिक नीति के मूल्य स्थिरता, वृद्धि तथा वित्तीय स्थायित्व जैसे विविध उद्देश्य हैं। ये उद्देश्य एक दूसरे के विरोधी नहीं हैं बल्कि परस्पर एक दूसरे को मज़बूत करते हैं। यह इसलिए है, क्योंकि मूल्यस्थिरता तथा वित्तीय स्थिरता उच्च वृद्धि स्तर को बनाए रखने के लिए ज़रूरी हैं जो सरकारी नीति का अंतिम उद्देश्य है।

[2]मोहन्ती तथा अन्य (2011), 'इन्फ्लेशन थ्रेशोल्ड इन इंडियाः एन एंपिरिकल इन्वेस्टिगेशन' *रिज़र्व बैंक वर्किंग पेपर सिरीज़,* 18/2011, पट्टनायक तथा नाधानील (2011) 'निरन्तर उच्च स्फीति विकास में रुकावट क्यों होती है (व्हाई परसिस्टेन्ट हाइ इन्फ्लेशन इंपीड्स ग्रोथ) ?' एन इंपीरिकल एसेसमेन्ट ऑफ थ्रेशोल्ड लेवल ऑफ इन्फ्लेशन इन इंडिया, *रिज़र्व बैंक वर्किंग पेपर्ज सिरीज़,* 17/2011

मौद्रिक नीति ढांचा

मौद्रिक नीति के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए एक स्थिर मौद्रिक नीति फ्रेमवर्क की घोषणा की ज़रूरत होती है। यह इसलिए आवश्यक है क्योंकि केंद्रीय बैंक, ऐसे साधनों के ज़रिए अप्रत्यक्ष रूप से ये उद्देश्य प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं, जो सीधे उनके नियन्त्रण में हैं। उदाहरण के लिए केंद्रीय बैंकों ने मौद्रिक लक्ष्यीकरण (टार्गेटिंग) फ्रेमवर्क के अन्तर्गत, आरक्षित नक़दी निधि अनुपात जैसे सीधे नियंत्रण में आने वाले साधनों के ज़रिये, मुद्रा आपूर्त्ति जैसे अन्तर्वर्ती लक्ष्य को प्रभावित करने का प्रयत्न किया, जिनका कीमतों और उत्पादन जैसे अंतिम उद्देश्यों के साथ स्थिर संबंध था।

तथापि, मौद्रिक ढांचा एक निरन्तर विकासशील प्रक्रिया रही है जो वित्तीय बाज़ारों तथा संस्थाओं के विकास के स्तर तथा साथ ही वैश्विक एकीकरण के स्तर पर भी आश्रित होती है। अन्य देशों की भांति भारत में भी मौद्रिक नीति ढांचे में, इन वर्षों में काफी बदलाव आया है। भारत ने 1980 के दशक के मध्य से 1997-98 तक, फीडबैक वाले एक मौद्रिक लक्ष्यीकरण ढांचे का अनुसरण किया जिसके अंतर्गत मौद्रिक नीति के मध्यवर्ती लक्ष्य के रू में स्थूल मुद्रा का प्रयोग किया गया। तथापि आर्थिक और वित्तीय क्षेत्र सुधारों के साथ हुई गतिविधियों के कारण 1990 के दशक के मध्य तक यह अपर्याप्त होता चला गया।

सबसे पहले, 1990 के दशक के दौरान वित्तीय बाज़ारों के विभिन्न घटकों के विकास के लिए किए गए उपायों से, वित्तीय क्षेत्र को सुदृढ़ करने के प्रभाव साफ दिखने लगे (चार्ट 1)। इससे ब्याज दरों जैसे अप्रत्यक्ष साधनों के जरिये नीति के संकेतों की संप्रेषणीयता की प्रभावशीलता में काफी सुधार दृष्टिगोचर हुआ।

दूसरे, भारतीय अर्थव्यवस्था के खुलने से, पूंजी आगम से बढ़ी नगदी की वृद्धि ने आरक्षित मुद्रा से निवल विदेशी परिसंपत्तियों का अनुपात बढ़ा दिया। इससे मौद्रिक कुल राशियों (एग्रीगेट्स) का नियंत्रण और भी कठिन हो गया। तीसरे, मौद्रिक नीति के अंतर्निहित संप्रेषण तंत्र में बदलावों के अधिक साक्ष्य भी दिख रहे थे क्योंकि मात्रा को प्रभावित करनेवाली वस्तुओं (वेरिएबल्ज़) की तुलना में ब्याज-दर और विनिमय-दर का महत्त्व बढ़ रहा था। 1990 के दशक के दौरान अर्थव्यवस्था में इन वित्तीय नवोन्मेषों की वजह से, मुद्रा के मांग कार्य की स्थिरता पर प्रश्नचिह्न लग गया। वित्तीय उदारीकरण तथा मौद्रिक प्रबंधन की जटिलताओं के कारण पैदा हुई चुनौतियों को पहचानते हुए,

चार्ट 1: वित्तीय क्षेत्र की सुदृढ़ता के संकेतक

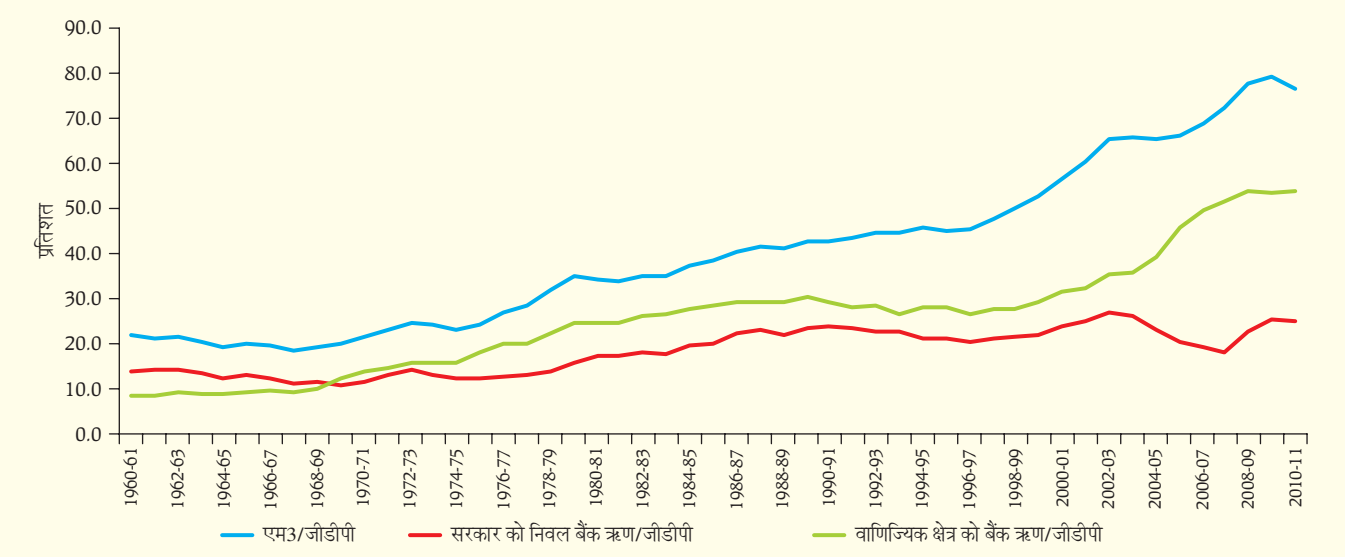

रिज़र्व बैंक ने 1998-99 में बहु संकेतक दृष्टिकोण की ओर रुख कर लिया।

बहु संकेतक दृष्टिकोण के अन्तर्गत, जहां स्थूल मुद्रा, सूचना-परिवर्तनीय-कारक के रूप में बनी रही, वहीं मौद्रिक नीति तैयार करने के लिए, दर के माध्यमों पर अधिक बल प्रदान किया गया। बहुत से वृहत् आर्थिक संकेतकों, जिनमें ब्याज दरें, वित्तीय बाज़ारों के विभिन्न घटकों की प्रतिफल दरें, मुद्रा के अन्य संकेतक, बैंकों तथा वित्तीय संस्थाओं द्वारा दिए गए ऋण, राजकोषीय स्थिति, व्यापार, पूंजी प्रवाह, स्फीति दर, विनिमय दर, पुनर्वित्त तथा उच्च फ्रीक्वेंसी आधार पर उपलब्ध विदेशी मुद्रा संबंधी लेन-देन के आंकड़ें शामिल हैं, को मौद्रिक नीति तैयार करने हेतु निहितार्थ निकालने के लिए, आमने-सामने रखा जाता है। इसके परिणामस्वरूप, विविध सूचनाओं की वजह से मौद्रिक नीति परिचालन और व्यापक आधार वाला हो गया और इससे मौदिक प्रबन्धन में और अधिक लचीलापन मिला।

तथापि, बहुसंकेतक दृष्टिकोण, स्वयं भी विकसित होता रहा और इसमें पुरोगामी संकेतकों और मितव्ययी समय श्रृंखला मॉडलों से और भी सुदृढ़ता आई।पुरोगामी संकेतक, रिज़र्व बैंक के औद्योगिक आउटलुक सर्वेक्षण, क्षमता उपयोग सर्वेक्षण, व्यावसायिक पूर्वानुमानकों के सर्वेक्षण तथा स्फीति संभावना सर्वेक्षणों से बनाए जाते हैं। इन संकेतकों और मॉडलों से लिए गए आकलनों का प्रयोग वृद्धि और स्फीति के पूर्वानुमान में किया जाता है। इसीके साथ-साथ रिज़र्व बैंक स्थूल मुद्रा (एम3) हेतु भी पूर्वानुमान देता है जो एक महत्वपूर्ण "सूचना परिवर्तनीय कारक" के रूप में कार्य करता है, ताकि अर्थव्यवस्था के संसाधन शेष को, सरकारी और निजी क्षेत्र की ऋण ज़रूरतों के अनुरूप बनाया जा सके। इस प्रकार मौद्रिक नीति के वर्तमान फ्रेमवर्क को 'वर्द्धित बहुसंकेतक दृष्टिकोण' कहा जा सकता है, जैसा कि चार्ट 2 में दिया गया है।

मौद्रिक नीति का कार्यान्वयन

मौद्रिक नीति के प्रभावी कार्यान्वयन के लिए, मौद्रिक नीति फ्रेमवर्क को एक सहायक परिचालन प्रक्रिया की ज़रूरत होती है। परिचालन प्रक्रिया की परिभाषा है, "मौद्रिक नीति के समग्र रुझान के अनुरूप मौद्रिक स्थितियों का दैनन्दिन प्रबंधन"। सामान्यतः इसमें ये

चार्ट 2: वर्द्धित बहु संकेतक दृष्टिकोण

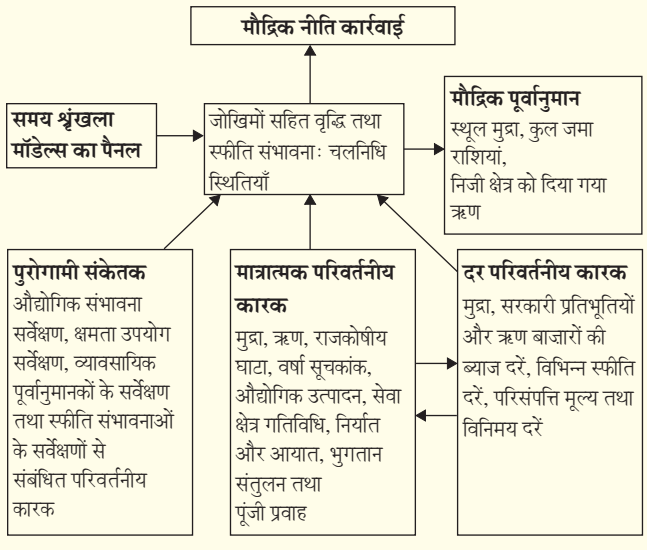

शामिल हैं : (i) सामान्यतः एक ब्याज-दर के रूप में, परिचालनात्मक लक्ष्य परिभाषित करना; (ii) ऐसी नीति दर निर्धारित करना जो परिचालनात्मक लक्ष्य को प्रभावित कर सके; (iii) अल्पावधि बाज़ार ब्याज-दरों के लिए कोरिडोर का आयाम निर्धारित करना; (iv) परिचालनात्मक लक्ष्य ब्याज-दर को कोरिडोर के भीतर रखने के लिए चलनिधि परिचालन करना; तथा (v) नीतिगत आशयों का संकेत करना।

मौद्रिक नीति के ढांचे की ही भांति, तदनुरूपी परिचालन प्रक्रिया भी, भारत में एक विकासशील प्रक्रिया रही है। बैंकों की देयताओं तथा खुले बाज़ार परिचालनों पर सीआरआर लगाना पारंपारिक रूप से मौद्रिक नीति के उपकरण रहे हैं, परन्तु 2004 में 'नकदी समायोजना सुविधा की शुरुआत से, वांछित ब्याज-दरों पर प्रणालीगत नकदी का ओवरनाइट प्रबंधन मौद्रिक नीति के सबसे क्रियाशील औज़ार के रूप में उभरा है। बाज़ार ब्याज-दर को आवश्यक के दिशा प्रदान करने के लिए, एलएएफ, ओवरनाइट स्थिर दर रेपो (केन्द्रीय बैंक नगदी इंजेक्शन दर) तथा रिवर्स रिपो (केन्द्रीय बैंक नकदी अवशोषण दर) के माध्यम से परिचालित की गई। तथापि इस प्रकिया में दो बड़ी ख़ामियां थीं। पहली तो यह कि इसमें एकल नीति-दर का अभाव था। इसके परिणामस्वरूप, प्रचलित नकदी स्थिति के आधार पर, परिचालन नीति-दर, रिपो तथा रिवर्स रिपो दरों के बीच बदलती रही। दूसरी ख़ामी, एक निश्चित कोरिडोर का अभाव था जिससे चलनिधि दबाव की हालत में निहित लक्ष्य दर (मांग दर) ऊपरी तथा निचली सीमाओं से बाहर भी जाती रही। इन ख़ामियों को देखते हुए, एक नई परिचालन प्रक्रिया मई 2011 में लागू की गई।

नई परिचालन प्रक्रिया

नई परिचालन प्रक्रिया में पूर्ववर्ती एलएएफ ढांचे की ज़रूरी विशेषताएं निम्नलिखित मुख्य संशोधनों के साथ बरक़रार रखी गईं। पहला, भारित औसत एक दिवसीय मांग मुद्रा को, स्पष्टतः, मुद्रानीति के परिचालन लक्ष्य के रूप में मान्यता दी गई। दूसरा, रिपो रेट को, एकमात्र, स्वतंत्र रूप से परिवर्तनीय पॉलिसी दर बनाया गया। तीसरे, एक नई सीमान्त स्थायी सुविधा शुरू की गई जिसके अन्तर्गत, अनुसूचित वाणिज्य बैंक, अपनी इच्छा से रिपो दर के 100 आधार बिन्दु ऊपर की दर पर, अपनी निवल मांग और समय देयताओं के 1 प्रतिशत तक, एक दिवसीय (ओवरनाइट) उधार ले सकते थे। चौथे, संशोधित कोरिडोर को, 200 आधार बिन्दुओं के निश्चित विस्तार के रूप में परिभाषित किया गया । रिपो रेट को कॉरिडोर के मध्य में रखा गया, रिवर्स रिपो दर को इसके 100 आधार बिन्दु नीचे तथा सीमान्त स्थायी सुविधा दर को इसके 100 आधार बिंदु ऊपर रखा गया। वर्तमान परिचालन ढांचा चार्ट 3 में दिया गया है।

पूर्ववर्ती एलएएफ ढांचे की कुछ बड़ी ख़ामियों को दूर करके, इस नई परिचालन प्रक्रिया से, मौद्रिक नीति के कार्यान्वयन और ट्रांसमिशन में सुधार की आशा थी। पहले, एक परिचालन लक्ष्य की स्पष्ट घोषणा से, बाज़ार सहभागी, वांछित नीति प्रभाव के बारे में स्पष्ट हो जाते हैं। दूसरे, एक एकल नीति दर, रिपो तथा रिवर्स रिपो दरों के बीच पॉलिसी दर प्रत्यावर्तन से होने वाले भ्रम को दूर करती है। यह मौद्रिक नीति के रुझान के संकेत की सटीकता में भी सुधार लाती है। तीसरे, एमएसएफ,

चार्ट 3: संशोधित चलनिधि समायोजन सुविधा ढाँचा

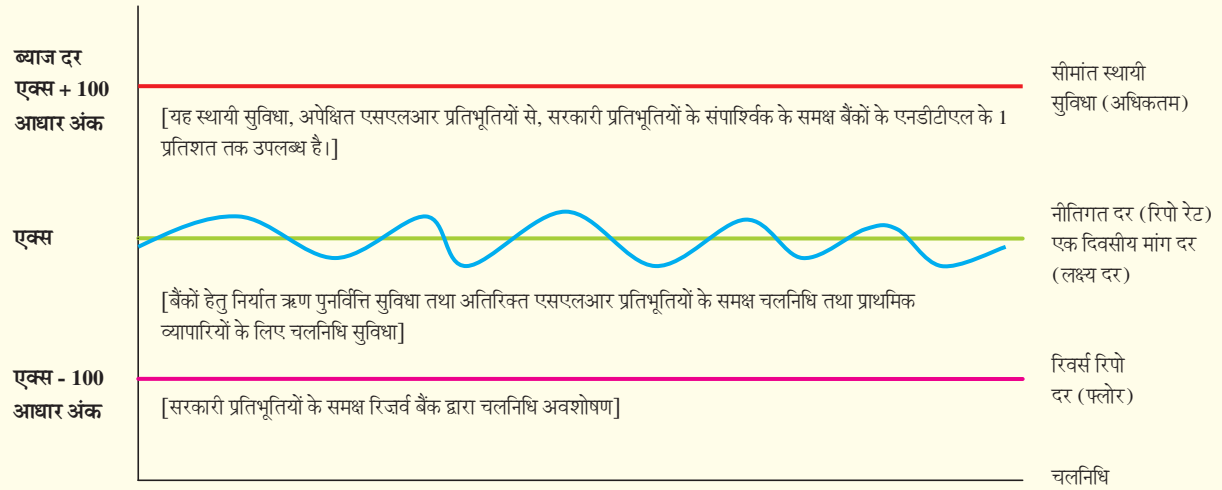

अप्रत्याशित चलनिधि झटकों के समक्ष एक सुरक्षा वाल्व प्रदान करता है। चौथे, सीमान्त स्थायी सुविधा दर तथा रिवर्स रेपो दर द्वारा निर्धारित एक स्थायी ब्याज दर कोरीडोर, अनिश्चितता कम करके तथा एक परिवर्तनीय कोरिडोर के साथ जुड़ी संचार संबंधी कठिनाइयों को दूर करके, एक दिवसीय औसत मांग मुद्रा दर को रिपो दर के करीब रखने में मदद करेगा।

मौद्रिक नीति संचरण में सुधार

चूंकि नयी परिचालन प्रक्रिया केवल छः महीने पहले ही शुरू की गई थी अतः इसकी प्रभावोत्पादकता के संबंध में निष्कर्ष निकालना थोड़ी जल्दबाज़ी होगी। तथापि अब तक का अनुभव यह बताता है कि, इसके कार्यान्वयन के बाद से एक दिवसीय ब्याज दर अधिक स्थिर हो गई है (चार्ट 4)।

नया परिचालन ढांचा, मौद्रिक संचरण की ब्याज दर सरणी के प्रभुत्व की पूर्वकल्पना के आधार पर काम करता है जो कम नकदी की स्थिति में अधिक प्रभावी रहता है। इसके कार्यान्वयन से अब तक हम प्रणालीगत चलनिधि की कमी की स्थिति बनाए रख सके हैं। इसके परिणामस्वरूप, मांग मुद्रा बाज़ार ब्याज दर में गतिशीलता के संदर्भ में, मौद्रिक नीति के संचरण में सुधार दिखा है (चार्ट 5)।

यह भी पाया गया है कि नए परिचालन ढांचे के कार्यान्वयन के बाद, मुद्रा बाज़ार की ब्याज़ दरें और अधिक अनुकूल हुई हैं (चार्ट 6)।

चार्ट 4: नई प्रक्रिया के अन्तर्गत मांग दर की स्थिरता में सुधार

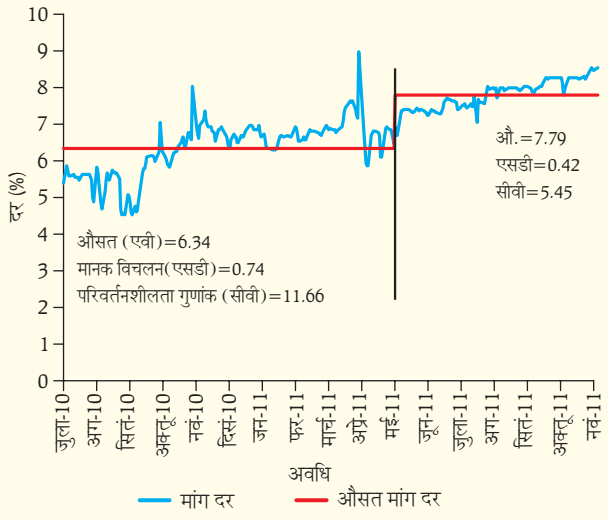

चार्ट 5: कम नकदी की स्थिति में, मौद्रिक संचरण मज़बूत होता है

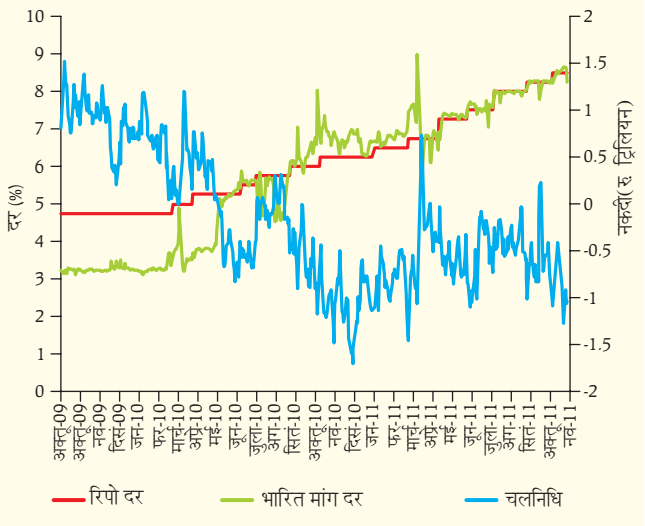

इसके अलावा, ऋण बाज़ार लिखतों की दरों और मांग दर के बीच अधिक सामीप्य से, ऋण बाज़ार घटक के बेहतर संचरण का भी साक्ष्य मिला है (चार्ट 7)।

ऋण बाज़ार में संचरण और अधिक जटिल है तथा यह लागत सरणी के माध्यम से होता है। नकदी की स्थिति तथा ऋण मांग के आधार पर जमाराशियों की दरों में बदलाव लाकर, बैंक नीतियों में परिवर्तन करते हैं । मौद्रिक बाज़ार दरों में बढ़ोतरी के साथ-साथ जैसे-जैसे जमाराशियों की लागतें बढ़ती हैं, वैसे-वैसे ऋण वितरण दरें, अंतराल के साथ, नीतिगत दरों में बदलाव को प्रत्युत्तरित करती हैं (चार्ट 8)।

चार्ट 6: माँग दरें अन्य मुद्रा बाज़ार दरों के साथ तालमेल से चलती है

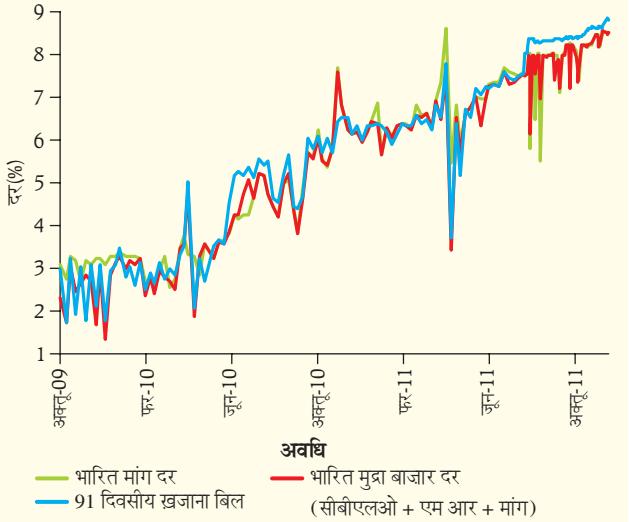

चार्ट 7: निचले स्तर से मांग दरें बढ़ने से, ऋण बाज़ार में, मौद्रिक संचरण सुधरता है

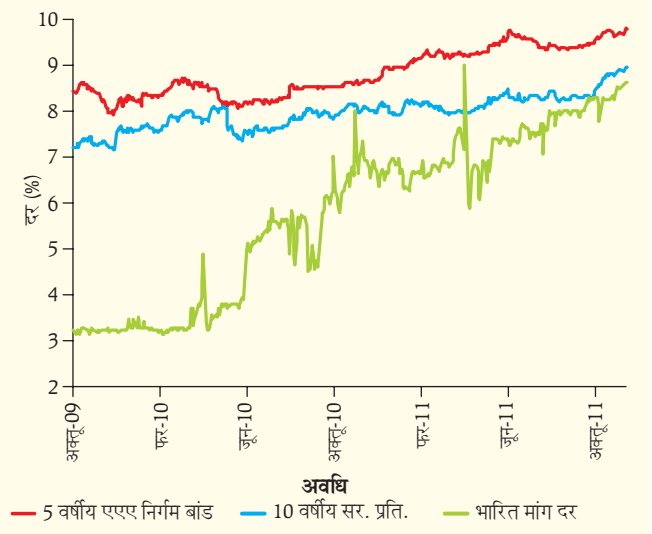

चार्ट 8: बैंक जमाराशियों तथा ऋण वितरण दरों का संचरण

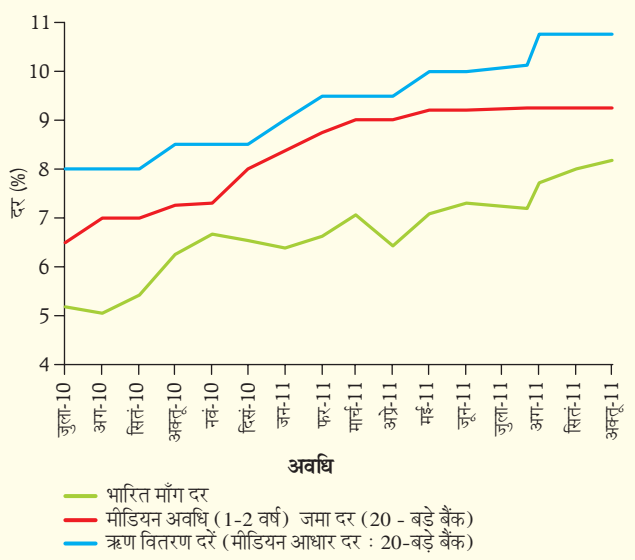

नीति निर्माण प्रक्रियाएं

मौद्रिक नीति फ्रेमवर्क तथा तदनुरूपी परिचालन प्रक्रिया के साथ-साथ, एक नीति निर्माण प्रक्रिया भी है। पारम्परिक रूप से भारत में मौद्रिक नीति निर्माण की प्रक्रिया आंतरिक ही रही है और केवल कार्रवाई के बारे में ही जनता को अंत में बताया जाता है। समय के साथ यह प्रक्रिया, अधिक परामर्शी और सहभागी प्रकृति की बन गई है जिसमें बाह्य अभिमुखीकरण भी शामिल है। मौद्रिक नीति की कार्रवाई को अंतिम रूप देने से पहले की प्रक्रिया में व्यापक निविष्टियाँ शामिल होती है जिनमें आंतरिक स्टाफ, बाज़ार सहभागी, शिक्षाविद, वित्तीय बाज़ारों के विशेषज्ञ तथा रिज़र्व बैंक बोर्ड का योगदान शामिल होता है (चार्ट 9)।

तकनीकी विश्लेषण, समन्वय, समस्तर प्रबंधन तथा अधिक बाज़ार अभिमुखीकरण पर अधिक ध्यान केन्द्रित करने के लिए रिज़र्व बैंक के अंदर भी इसकी प्रक्रिया को नया रूप दिया गया है। तीन संबंधित अनुसंधान विभाग - मौद्रिक नीति विभाग, आर्थिक और नीति अनुसंधान विभाग तथा सांख्यिकी और सूचना प्रबन्ध विभाग अपने स्वतंत्र तकनीकी आकलन और इनपुट्स, 'मौद्रिक नीति कार्यनीति बैठक' में प्रस्तुत

चार्ट 9: मौद्रिक नीति तैयार करने की प्रकियाएं

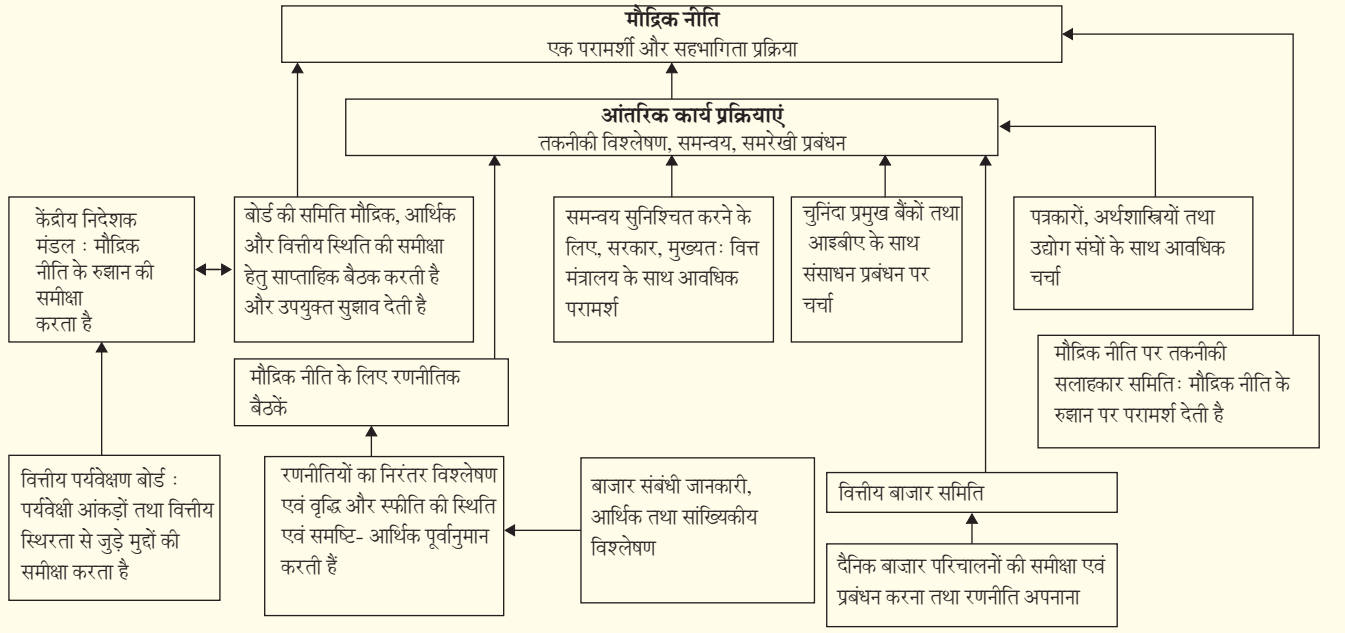

करते हैं। इस बैठक की अध्यक्षता गवर्नर करते हैं तथा इसमें शीर्ष प्रबन्धन शामिल होता है। बृहत आर्थिक प्रबन्धन की जटिलताओं को देखते हुए, दृष्टिकोणों की विभिन्नता, सामूहिक सोच की अप्रत्याशित स्थिति से बचने में मदद देती है।

चूंकि बैंक रिज़र्व बैंक के बड़े पूरक हैं इसलिए संसाधन प्रबन्ध चर्चाओं के माध्यम से पूर्व-नीति परामर्श, 20 बड़े वाणिज्य बैंकों के साथ किए जाते हैं जिनका बैंकिंग कारोबार में तीन चौथाई से भी अधिक का हिस्सा है। इसके अतिरिक्त वित्तीय क्षेत्र में, भारतीय बैंक संघ, शहरी तथा ग्रामीण सहकारी बैंक, ऋण संघों तथा गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों के संघों के साथ भी सलाह-मशविरा किया जाता है। संपदा क्षेत्र में राष्ट्रीय स्तर के व्यापारिक संघों के साथ परामर्श किया जाता है। चयनित अर्थशास्त्रियों तथा वरिष्ठ आर्थिक पत्रकारों के साथ भी यह जानने के लिए परामर्श किए जाते हैं कि आर्थिक स्थिति के बारे में उनके क्या विचार हैं तथा नीति के संबंध में उनकी क्या सिफ़ारिशें हैं।

सर्वोत्तम अंतरराष्ट्रीय पद्धतियों के अनुसार रिज़र्व बैंक ने बाहरी विशेषज्ञों की एक तकनीकी सलाहकार समिति गठित की है, हालांकि इसकी भूमिका सलाह देने की है। पारदर्शिता बढ़ाने की दृष्टि से, समिति की बैठकों के चार सप्ताह के भीतर इस समिति की चर्चाओं तथा नीतिगत सिफारिशों को सार्वजनिक कर दिया जाता है। तथापि, मौद्रिक नीति संबंधी मामलों पर निर्णय लेने वाले सर्वोच्च प्राधिकारी, रिज़र्व बैंक के गवर्नर ही होते हैं।

कई अन्य स्थायी तथा तदर्थ समितियां और समूह भी हैं जो नीतिगत परामर्श में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। एक अंतर्विभागीय वित्तीय बाजार समिति दैनंदिन बाजार परिचालनों और युक्तियों पर निरंतर ध्यान केंद्रित करती है। यह सब सलाह-मशविरा और तकनीकी विश्लेषण वर्तमान परिस्थितियों में, गवर्नर को यथासंभव सर्वोत्तम निर्णय लेने में भी मदद करता है, और नीति निर्माण की प्रक्रिया को और अधिक पारदर्शी बनाता है। इसके अतिरिक्त, गवर्नर तथा बैंक का सर्वोच्च प्रबंध-तंत्र, तिमाही नीति वक्तव्य, तिमाही के मध्य की जाने वाली समीक्षाओं तथा प्रेस इंटरव्यूज़ और भाषणों के जरिये, इन नीतिगत निर्णयों के पीछे के तर्क के बारे में भी बताते रहते हैं।

यद्यपि मौद्रिक नीति तैयार करना एक तकनीकी प्रक्रिया है फिर भी यह एक अन्य परामर्शी और सहभागी प्रक्रिया के रूप में विकसित हुई है। इससे न केवल मौद्रिक नीति की पारदर्शिता बढ़ती है बल्कि संबंधित हितधारकों के विश्लेषण और दृष्टिकोणों से ये नीति-निर्णय व्यापक सूचनाओं पर भी आधारित हो जाते हैं। चूंकि बाजार-आधारित आधुनिक अर्थव्यवस्थाओं में बहुत से परिणाम प्रत्याशाओं से निदेशित होते हैं, अतः एक परामर्शी प्रक्रिया, प्रत्याशाओं के प्रबंधन में भी सहायक होती है।

वृद्धि-स्फीति कार्यनिष्पादन

जैसाकि मैंने उल्लेख किया था, भारत का मौद्रिक नीति ढांचा, मौद्रिक लक्ष्यकरण व्यवस्था से बहुसंकेतक व्यवस्था में तब्दील हुआ। यह तब्दीली वित्तीय बाजारों के विकास, भारतीय अर्थव्यवस्था के वैश्विक अर्थव्यवस्था के साथ बढ़ते एकीकरण तथा मौद्रिक नीति के बदलते संचरण के कारण आई । एक वाजिब सवाल यह उठता है कि इस बदलाव ने, आर्थिक परिणामों, खासकर, वृद्धि-स्फीति कार्यनिष्पादन को कैसे प्रभावित किया?

सारणी 1 में दो व्यापक प्रवृत्तियां स्पष्ट हैं। पहली, वास्तविक जीडीपी वृद्धि, निर्धारित अवधि में मोटे तौर पर सुधरी और इसमें उतार-चढ़ाव में कमी आई। दूसरी, बहु-संकेतक दृष्टिकोण अपनाने से गत दशक में, स्फीति संबंधी कार्यनिष्पादन में पर्याप्त सुधार आया। तथापि 2010-11 में तथा 2011-12 में अब तक, स्फीति संबंधी कार्यनिष्पादन में गिरावट आई है। इस संदर्भ में यह जानना जरूरी है कि स्फीति में हुई हाल की वृद्धि, वैश्विक वित्तीय संकट का ही परिणाम है। सामान्य स्थितियों में स्फीति के प्रबंधन की अपेक्षा, ऐसी अर्थव्यवस्था की स्फीति का प्रबंधन, जो गिरावट से उबर रही हो, अनिश्चितताओं के कारण, बहुत जटिल होता है।

सारणी 1: चुनिंदा समष्टि-आर्थिक संकेतक

संकेतक	जीडीपी वृद्धि (%)	स्फीति (%)		मांग दर (%)
		डब्ल्यूपीआइ	सीपीआइ	
	1	2	3	4
मौद्रिक लक्ष्यकारी अवधि				
1985-86 से 1997-98	5.5 (2.2)	8.1 (3.0)	9.1 (2.1)	11.7 (4.0)
बहुसंकेतक अवधि				
1998-99 से 2009-10	7.0 (1.9)	5.3 (1.6)	6.3 (3.5)	6.4 (1.8)
2010-11	8.5	9.6	10.4	5.8
2011-12 (अब तक)	7.3*	9.6#	9.0*	7.6#

टिप्पणी: कोष्ठकों में दिए गए आंकड़े मानक विचलन के प्रतिनिधिक हैं जिनका अर्थ है - संबंधित संकेतकों में उतार चढ़ाव
सीपीआई: उपभोक्ता मूल्य सूचकांक - औद्योगिक कामगार
* अप्रैल-सितंबर 2011 # अप्रैल-अक्तूबर 2011

2007 के संकट के प्रारंभिक चरण में ऐसा लगा था कि उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाएं वैश्विक वित्तीय मंदी के तूफान का सामना करने के लिए अच्छी स्थिति में हैं क्योंकि उनके पास अच्छा विदेशी मुद्रा भंडार है, अच्छा नीति फ्रेमवर्क तथा आम तौर पर मजबूत बैंकिंग क्षेत्र और कॉरपोरेट तुलन-पत्र हैं।

तथापि, ईएमई के बारे में यह उम्मीद कि वे संकट से बची रह पाएंगी, सितंबर 2008 में लेहमन ब्रदर्स के धराशायी होने के बाद फीकी पड़ गई क्यों कि इस घटना ने वैश्विक डीलीवरेजिंग को बढ़ावा दिया और जोखिम से बचने की प्रवृत्ति पर ज्यादा ध्यान देना शुरू कर दिया। अंततः उभरती अर्थव्यवस्थाएं भी इसके प्रभाव की चपेट में आ गईं, पहले तो विश्व व्यापार के संकुचन के माध्यम से और दूसरे, पूंजी प्रवाह की प्रवृत्ति के उलट जाने के कारण।

भारत प्रारंभ मैं तो वैश्विक संकट से कुछ-कुछ बचा रहा परंतु बाद में सभी सरणियों के ज़रिये, वैश्विक आघतों से, काफी प्रभावित हुआ, जैसे व्यापार, वित्त और प्रत्याशा सरणियों के माध्याम से। इसके प्रत्युत्तर में रिज़र्व बैंक ने, घरेलू वित्तीय प्रणाली और अर्थव्यवस्था पर वैश्विक घटनाओं के प्रतिकूल प्रभाव को सीमित करने के लिए कई व्यापक उपाय शुरू किये।

अधिकांश केंद्रीय बैंकों की भांति, रिज़र्व बैंक ने भी, घरेलू और विदेशी मुद्रा चलनिधि को बढ़ाने के लिए बहुत से परंपरागत और गैर-परंपरागत उपाय किए तथा नीति दरों को काफ़ी कम कर दिया। अक्तूबर 2008 से अप्रैल 2009 के सात महीनों में अभूतपूर्व नीतिगत सक्रियता जारी रही। उदाहरणार्थ : (i) रिपो रेट 425 आधार अंक घटाकर 4.75 प्रतिशत कर दिया गया ; (ii) रिवर्स रिपो दर 275 आधार अंक घटाकर 3.25 प्रतिशत कर दी गई; (iii) बैंकों का आरक्षित नकदी निधि अनुपात उनकी निवल मांग और मीयादी देयताओं का संचयी 400 आधार अंक घटाकर 5.0 प्रतिशत कर दिया गया, तथा (v) वित्तीय प्रणाली को संभावित रूप से उपलब्ध करवाई गई प्रारंभिक चलनिधि की कुल राशि 5.6 ट्रिलियन से अधिक अर्थात् जीडीपी के 10 प्रतिशत से अधिक थी। सरकार ने भी विभिन्न राजकोषीय वृद्धिकारक उपाय शुरू किए।

चूंकि वृद्धि में सुधार के काफ़ी संकेत मिल रहे थे तथा अकाल और वैश्विक जिंसों की कीमतों में उछाल के कारण, स्फीतिकारी दबाव बढ़ रहे थे, अतः स्फीति सीमा के संभावित पथ की प्रत्याशा में तथा साथ ही इसके स्रोत और संरचना को ध्यान में रखकर, अक्तूबर 2009 में, मौद्रिक नीति के अत्यधिक अनुकूलनकारी रुझान से बाहर आने की प्रक्रिया शुरू की गई। प्रथम दौर के मौद्रिक नीतिगत उपाय, बिना अधिक हलचल के, अत्यधिक वृद्धिकारी स्वरूप से सामान्यीकरण की ओर बढ़ने की प्रकृति के थे। घरेलू वृद्धि-मुद्रास्फीति सहसंबंध को ध्यान में रखकर नीतिगत उपायों को अत्यंत सावधानीपूर्वक तय किया गया। जैसे-जैसे वृद्धि ने जोर पकड़ा तथा स्फीति अधिक साधारणीकृत हुई, वैसे-वैसे मौद्रिक नीति के उपायों का प्रभाव बढ़ता गया। प्रारंभ में मौद्रिक संचरण कमज़ोर था क्योंकि प्रणालीगत चलनिधि, जरूरत से ज्यादा थी। परंतु जुलाई 2010 में चलनिधि में कमी आई, वैसे ही मौद्रिक संचरण में सुधार आ गया।

अक्तूबर 2009 से सीआरआर 100 आधार अंक बढ़ा दिया गया है। नीति रिपो दर 375 संचयी आधार अंक बढ़ा दिया गया है। प्रणाली में चलनिधि के सरप्लस से कमी के रूप में परिवर्तित होने के साथ ही से, नीति दर में 525 आधार अंकों की प्रभावी वृद्धि की गई है। इस प्रकार संचयी मौद्रिक नीति कार्रवाई का, स्फीति पर वांछित प्रभाव होगा। ऐसी आशा है कि 2011-12 के उत्तरार्ध में स्फीति में गिरावट आएगी और यह वर्ष के अंत तक 7 प्रतिशत तक आ जाएगी। वर्तमान मौद्रिक रुझान अस्फीतिकारी बना हुआ है।

वैश्विक वित्तीय संकट से सबक

जैसा कि मैंने पहले भी उल्लेख किया, मौद्रिक नीति का विकास, न केवल मौद्रिक अर्थशास्त्र में निदर्शनीय परिवर्तन से प्रभावित होता है, बल्कि वित्तीय बाज़ार और समष्टि-आर्थिक परिणामों से भी प्रभावित होता है। प्रतिकूल परिस्थितियों में वर्तमान आर्थिक नीतियों की पर्याप्तता की परीक्षा होती है जैसा कि हाल के वैश्विक वित्तीय संकट के दौरान हुआ था। संकट वांछनीय नहीं होते, मगर उनसे बचा भी नहीं जा सकता। तथापि वे हमें, हमारे प्रचलित नीतिगत ढांचे के विभिन्न सिद्धांतों का आकलन करने का अवसर प्रदान करते हैं। इस पृष्ठभूमि में, मैं कुछ महत्वपूर्ण मौद्रिक नीतिगत सबकों का उल्लेख करना चाहूंगा जो हमने हाल के संकट से सीखे हैं।

पहला, हाल के संकट ने दिखाया है कि मात्र अल्पावधि उद्देश्यों के परिष्करण की ओर लक्ष्यित मौद्रिक नीति जोखिम पैदा कर सकती है। संकट से पूर्व, मौद्रिक नीति, अल्पावधि मांग प्रबंधन की ओर अधिक केंद्रित थी जबकि स्फीति पूरी तरह नियंत्रण में थी, खासकर विकसित अर्थव्यवस्थाओं में । यह भी अनुभव किया गया कि आउटपुट अंतरालों तथा मूलस्फीति के उपायों जैसे संकेतकों के आधार पर मौद्रिक नीतिक परिष्करण ने, केंद्रीय बैंकों को, अत्यधिक ''अल्पावधित्व'' की ओर धकेला। इसी से जोखिम पैदा हुए। इसलिए अल्पावधि उद्देश्यों पर

केंद्रित नीतियों से, मध्यावधि और दीर्घावधि में, वांछित आर्थिक परिणाम नहीं भी मिल सकते हैं।

दूसरा, हाल के संकट से प्राप्त अनुभव ने यह अवधारणा बदल दी है कि केंद्रीय बैंक, अपने वृहत आर्थिक स्थिरीकरण उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कैसे आगे बढ़ें । यह स्पष्ट हो गया है कि मौद्रिक नीति के अधिदेश में केवल मूल्य स्थिरता ही नहीं बल्कि व्यापक वित्तीय स्थिरता भी शामिल होनी चाहिए। इसने ''एक उद्देश्य के लिए एक इन्स्ट्रूमेंट'' के टिन्बर्गन के नियम की अव्यवहार्यता की ओर भी ध्यान खींचा है। व्यवहार में, ब्याज दरों में परिवर्तन से वित्तीय स्थिरता प्रभावित होती है। इसी प्रकार, समष्टि-विवेकाधीन उपकरण, ऋण वृद्धि को प्रभावित करते हैं जिससे मौद्रिक संचरण भी प्रभावित होता है। मौद्रिक नीति के उपयुक्त डिजाइन के लिए, ब्याज दर तथा समष्टि-विवेकाधीन उपकरणों के बीच, परस्पर-क्रिया को महत्व देना ज़रूरी है। इससे वित्तीय प्रणाली की गतिविधियों के विश्लेषण और उसकी क़रीब से निगरानी का महत्व उजागर होता है ताकि संभावित जोखिमों को, मौद्रिक नीति बनाने तथा उसके कार्यान्वयन में एकीकृत किया जा सके।

तीसरा, संकट के दौरान, केंद्रीय बैंकों के परिचालन ढांचों में, मौद्रिक नीतिगत उपकरणों की अपर्याप्तता भी सामने आई। जैसा कि संकट के प्रथम चरण में दिखाई दिया, नीति ब्याज दर के इन्स्ट्रूमेन्ट के ज़रिए बनाई और कार्यान्वित की गई मौद्रिक नीति प्रभावहीन रही। परिणामस्वरूप, केंद्रीय बैंकों को, वित्तीय स्थिति को आरामदायक बनाने के लिए कई अन्य अपारंपरिक, मात्रा-आधारित उपायों का सहारा लेना पड़ा। अतः मौद्रिक उपकरणों के भंडार को और अधिक व्यापक बनाने की ज़रूरत है।

चौथा, यद्यपि वित्तीय संघर्ष, कारोबार चक्रों में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं, तथापि वे केंद्रीय बैंकों द्वारा नीति विश्लेषण के लिए प्रयुक्त किये गये मॉडलों का स्पष्ट हिस्सा नहीं थे (मिश्किन, 2011) ।[3] हाल के संकट को मिलाकर अधिकांश संकटों में यह देखा गया है कि वित्तीय प्रणाली को लगे आघातों से सूचना की विषमता बढ़ती है तथा नीति के संचरण पर भी असर पड़ता है। अतः ऐसे अधिकांश संघर्षों को न केवल ठीक से समझा जाए, बल्कि उन्हें उन समष्टि-आर्थिक मॉडलों में अंतर्निहित भी किया जाए जिन्हें केंद्रीय बैंक पूर्वानुमान तथा नीति निर्माण के लिए प्रयोग में लाते हैं।

पांचवाँ, संकट के बाद यह लगातार महसूस किया जा रहा है कि यदि केंद्रीय बैंकों को, व्यष्टि-विवेकाधीन विनियमन तथा बैंकों के पर्यवेक्षण के अधिकार भी दिए जाएं तो वे अंतिम उधारदाता की भूमिका का निर्वाह बेहतर ढंग से कर पाएंगे। प्रतिचक्रीयता के प्रभाव को कम करने के लिए, विनियामक और पर्यवेक्षी उपकरणों की सहायता से, समष्टि विवकाधीन कार्रवाई को सुदृढ़ भी बनाया जा सकता है।

छठाँ, भविष्य में मौद्रिक नीति की परिचालन प्रक्रियाओं को, संकट के दौरान सरकारी ऋणों में वृद्धि के प्रभावों को भी ध्यान में रखना होगा। इस संदर्भ में सेच्चेती (2011) ने सावधान किया है कि केंद्रीय बैंकों की भविष्य की परिचालन प्रक्रियाएं और अधिक जटिल होंगी तथा उनमें अधिक उपकरण और विकल्प बढ़ते रहेंगे।[4] अतः मौद्रिक नीति के कार्यान्वयन में, मौद्रिक तथा राजकोषीय समन्वय और भी महत्वपूर्ण हो जाएंगे।

निष्कर्ष

बड़े संकट, मौद्रिक नीति निर्माण को प्रभावित करते हैं क्योंकि वे प्रचलित पद्धतियों और विश्वासों की पर्याप्तता पर प्रश्नचिह्न लगाते हैं। इस संबंध में जिन मुद्दों का मैंने उल्लेख किया है उनमें से काफी पर पहले से ही चर्चा चल रही है, परंतु अभी तक उन पर सहमति नहीं बनी है। परंतु एक बात स्पष्ट है: केंद्रीय बैंकों को मूल्य स्थिरता के उद्देश्य के महत्त्व को कम किए बिना, व्यापक उद्देश्यों की चुनौती से जूझना पड़ेगा।

मौद्रिक नीति निर्माण, वित्तीय बाज़ारों तथा वास्तविक अर्थवयवस्था में होने वाले परिवर्तनों के प्रत्युत्तरस्वरूप, तथा उनके परिणामस्वरूप (दोनों ही दृष्टियों से) एक निरंतर विकासशील प्रक्रिया बनी रहेगी। भारत में, हमने अपने मौद्रिक नीति निर्माण में, पिछले लंबे समय में, इसे साक्षात देखा है। इस प्रक्रिया में भारत की मौद्रिक नीति, बेहतर परिणामों के लिए सभी सहभागियों की बढ़ती भागीदारी के कारण और अधिक पारदर्शी हुई।

[3] मिश्किन, फ्रेडरिक एस. (2011). मॉनेटरी पॉलिसी स्ट्रेटेजी : लेसन्स फ्रॉम द क्राइसिस' *एनबीईआर वर्किंग पेपर* 16755, फरवरी

[4] सेच्चेती, स्टीफन जी (2011). मॉनेटरी पॉलिसी लेसन्स लर्न्ट फ्रॉम द क्राइसिस एण्ड द पोस्टक्राइसिस लैंडस्केप' अक्तूबर में क्वालालम्पुर में आयोजित एसईएसीईएन - सीईएमएलए सममेलन में की गई टिप्पणियां।